इकाई 6.दण्डी -काल निर्धारण, दशकुमारचरित एवं लक्षण ग्रन्थ का विस्तृत विवेचन

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 महाकवि दण्डी -जीवन एवं कृतित्व

6.3.1 दण्डी का व्यक्तिगत परिचय

6.3.2 दण्डी का समय एवं स्थिति काल

6.3.3. दण्डी के प्रमुख ग्रन्थ

6.4 दण्डी द्वारा रचित ग्रंथ दशकुमार चरित

6.5 लक्षणग्रन्थ काव्यादर्शका विस्तृत विवेचन

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 बोध प्रश्न के उत्तर

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने गद्य कवि सुबन्धु एवं उनकी रचना वासवदत्ता का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करेंगे। वस्तुतः संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग अत्यधिक प्राचीन काल से होता आया है। प्राचीनकाल में पद्य की अपेक्षा गद्य को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। कालान्तर में धीर-धीर दर्शनग्रन्थ ज्योतिषग्रन्थ; व्याकरण गृन्थ ;आदि की सहायता से गद्य पूर्ण विकासित रूप में स्थापित हो गया।

मध्य काल में संस्कृत गद्य साहित्य का जो रूप विकसित हुआ उसे देख कर इतिहासकारों ने कहा है- वैदिक काल सें आरम्भ कर मध्यकाल तक गद्य को विकासित होने का इतिहास बड़ा ही मनोरम है। गद्य के दो रूप वैदिककाल का सीधा -साधा बोल -चाल का गद्य एवं लौकिक संस्कृत का प्रौढ़ समास बहुल गाढ़बन्ध वाला गद्य। इस प्रकार के मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में अपना योगदान जिस रूप में दण्डी ने दिया है वह अद्वितीय है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप आचार्य दण्डी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में अत्यन्त ही सूक्ष्म दृष्टि से बता सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप

- आचार्य दण्डी के विषय में कुशलता पूर्वक जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
- दण्डी के कृतित्व (दशकुमार चरित तथा काव्यादर्श) का परिचय दे सकेंगे।
- लक्षण विषयक ग्रन्थ के विषय में समझा सकेंगे।

6.3 महाकवि दण्डी-जीवन एवं कृतित्व

जिस प्रकार रूद्रट, आनन्दवर्धनाचार्य और मम्मट जैसे लब्ध प्रतिष्ठ सुप्रसिद्ध साहित्याचार्यो ने भामह का नाम और उसका मत गौरव के साथ उल्लेख किया है, तादृश उल्लेख यद्यपि दण्डी के विषय में दृष्टिगत नहीं होता है, पर उसका यही कारण नहीं कि दण्डी के ग्रंथ का महत्व भामह के समकक्ष नहीं, यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो भामह का न्यायदोष प्रकरण यदि दण्डी से अधिक महत्वपूर्ण है, तो दण्डी की अलंकार, रीति और गुणों के विवेचन की मौलिकता भामह की अपेक्षा कही अधिक परिष्कृत और उपयोगी है। सुप्रसिद्ध प्राचीन साहित्याचार्यों द्वारा भामह के समान दण्डी का उल्लेख न किये जाने का एकमात्र कारण संभवतः यही है कि दण्डी दाक्षिणात्य थे और भामह काश्मीरी। साहित्य के प्राचीन प्रसिद्ध लेखक प्रायः काश्मीरी ही अधिक हुए हैं। इसी से उनके द्वारा भामह को इतना गौरव प्राप्त हो सका है और उस गौरव का मम्मट एवं रूय्यक के समय तक उसी प्रकार प्रभाव रहा है। किन्तु आचार्य मम्मट के

काव्यप्रकाश की व्यापक और अत्यंत विद्वत्तापूर्ण विवेचना के प्रकाश ने केवल भामह के ग्रंथ को ही नहीं, अपितु प्रायः सभी पूर्वा पर ग्रंथों को निस्तेज कर दिया, फिर ऐसी अवस्था में दण्डी के ग्रंथ का-जो स्वयं ही निर्विकास था, अपनी पूर्वावस्था में रहना स्वाभाविक ही था।
दण्डी ही ऐसा प्रधान साहित्याचार्य है जिनमें अपने पूर्ववर्तियों से सबसे अधिक अलंकारों के उपभेदों का एवं गुण और रीति का विस्तृत निरूपण किया है। किन्तु उसके निरूपित अंलकारों के उपभेदों का अधिकांश में उसके परवर्ती आचार्यो के अनुसरण नहीं किया है।

6.3.1 दण्डी का व्यक्तिगत परिचय

'अवन्ति-सुंदरी के आधार पर दण्डी का थोड़ा चरित्र प्राप्त होता है कविवर भारवि के तीन लड़के हुए, जिनमें मनोरथ मध्यम पुत्र था। मनोरथ के भी चारों वेदों की भांति चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें वीरदत्त सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। 'वीरदत्त' की स्त्री का नाम गौरी था। इन्हीं से कविवर दण्डी का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता मर गये थे। वे कांची में निराश्रय ही रहते थे। एक बार कांची में विप्लव उपस्थित हुआ तब ये कांची छोड़कर जंगलों में इधर-उधर भटकते फिरते थे। अनन्तर शहर में शांति होने पर ये फिर पल्लव-नरेश की सभा में आ गए और वहीं रहने लगे। भारवि और दण्डी के समभावित संबंध के विषय में अब संदेह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डी के प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ भेद मिलने से इस मत का बदलना पड़ा है। नया पाठ नीचे दिया जाता है-

स मेधावी कविर्विद्वान भारवि प्रभवं गिराम्।
अनुरूध्याकरोन्मंत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने ।।

पहला पाठ प्रथमान्त 'भारवि' था, जब उसके स्थान पर द्वितीयान्त 'भारवि' मिला है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे, भारवि नहीं। इस नये पाठभेद से दोनों के समय-निरूपण के विषय में किसी तरह का परिवर्तन आवश्यक नहीं है। इस वर्णन से दण्डी के अंधकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है भारवि का संबंध उत्तरी भारत से न होकर दक्षिण भारत में था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी कांची (आधुनिक कांजीवरम्) दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म अत्यंत शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। कांची के पल्लव-नरेशों की छाया में इन्होंने अपने दिन सुखपूर्वक बिताए थे। इस वर्णन से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम० रंगाचार्य ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने'काव्यादर्श' की रचना की थी। काव्यदर्शन के प्राचीन टीकाकार तरूणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में कांची तथा वहां के शासक पल्लव-नरेशों की ओर इगिंत किया है - **नासिक्यमध्या परितष्चतुर्वर्णविभूषिता। अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाहया नृपा ।।**

अतः एव दण्डी को कांची के पल्लव-नरेश के आश्रय में मानना इतिहास तथा किंवदंती दोनों से सिद्ध होता है। दण्डी ने अपने काव्यादर्शमें दक्षिण प्रान्त के मलयानिल (2।174 और 3।136), काची (अस्पष्ट 3।114) कावेरी (3।166) और चोल (अस्पष्ट 3।166) स्थानों का वर्णन किया है। ऐसे ही आधारों पर दण्डी को दाक्षिणात्य कल्पना किया जाता है। संभव है यह कल्पना ठीक हो, जब कि दण्डी का वर्णन शैली भी वैदर्भी रीति प्रधान है जो काश्मीर प्रांत के साहित्यकों से प्रायः भिन्न प्रतीत होती है।

'' जाते जागति बाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।''

साहित्य के उपलब्ध प्राचीन लक्षण-ग्रंथों में भामह के बाद दण्डी का काव्यदर्श ही मिलता है। काव्यदर्श में तीन परिच्छेद हैं।

(1) प्रथम परिच्छेद में काव्य-परिभाषा, काव्य-भेद, महाकाव्य लक्षण, गद्य के प्रभेद, कथा, आख्यायिका, मिश्र-काव्य, भाषा-प्रभेद, वैदर्भ आदि मार्ग, अनुप्रास, गुण और काव्य-हेतु का विवेचन है।

(2) द्वितीय परिच्छेद में 35 अर्थालंकार (संसृष्टि सहित) निरूपण किये गये हैं।

(3) तृतीय परिच्छेद में यमक, गोमूत्रादि चित्रबंध काव्य, प्रहेलिका और दश दोषों का निरूपण है।

6.3.2 दण्डी का समय एवं स्थिति - काल

नवम शताब्दी के ग्रंथों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंघली भाषा के अंलकार-ग्रंथ 'सिय-बस-लकर' (स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्शन के आधार पर की गई है। इसका रचयिता राजा, सेन प्रथम महावंश के अनुसार 846 - 66 ई॰ तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ भाषा के अलंकारग्रंथ ' कविराजमार्ग ' में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से पूर्णतः लिये गये या कहीं - कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये है। हेतु अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण तो दण्डी से अक्षरश: मिलते हैं। इसके लेखक 'अमोघवर्ष' का समय 815 ई के आसपास माना जाता है। अतएव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती है। यह तो दण्डी के काल की अंतिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। यह निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समग्र पद्य दण्डी की ही मौलिक रचना नहीं है, उनमें प्राचीनों के भी पद्य सन्निविष्ट है। लक्ष्म लक्ष्मी तनोतीति प्रतीति-सुभग वच में दण्डी के इति शब्द के स्पष्ट प्रयोग से यहां जाना जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध **पद्यांश 'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति'** से उद्धरण दिया गया है। अतः इनके कालिदास के अनन्तर होने में तो संदेश का ध्यान नहीं है, परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के भी अनन्तर प्रतीत होते हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्य सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधंकरं यूना यौवनप्रभवं तमः।।

काव्यादर्श इस पद्य में कादम्बरी में चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिए गए उपदेश की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। दण्डी को बाणभट्ट (7 वीं सदी पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपति नहीं जान पड़ती है। प्रो. पाठक की सम्मति में काव्यादर्श में निर्वत्य, विकार्य, तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्ता भर्तृहरि (650 ई०) के अनुसार किया गया है। काव्यादर्श के उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरूद अथवा उपनाम राजवर्मा था।) मान ले तो किसी प्रकार की अनुपपति उपस्थित नहीं होती। प्रो. आर. नरसिंहचार्य तथा डाक्टर बेलबल्कर ने भी इन दोनों की एकता मानकार दण्डी का समय सातवीं सदी का उतरार्द्ध बतलाया है। शैव-धर्म उत्तेजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय 690-715 ई० माना जाता है। अतः इनके सभा कवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् सप्तम शती के अंत तथा अष्टम के आरंभ में मानना उचित प्रतीत होता है।दण्डी का समय भी अत्यंत संदिग्ध है। दण्डी की अन्तिम सीमा के लिये अन्य ग्रंथों में निम्नलिखित आधार प्राप्त होते हैं-

(1) श्री अभिन्वगुप्ताचार्य ने, जिनका समय लगभग दशम शताब्दी है धन्यालोक की व्याख्या लोचन में लिखा है - **यथाहदण्डी-**

(2) प्रतिहारेन्दुराज ने, जिसका समय लगभग ईसवी सन् 925 है, उद्भटाचार्य के काव्यलंकारसारसंग्रह की लघुवृति पृष्ठ 28 में लिखा है- अतएव दण्डिना लिम्पीव इत्यादि।

(3) कनारी भाषा में 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रंथ राष्ट्रकूट के राजकुमार अमोघवर्ष प्रणीत है। उसके संपादक श्री पाठक के कथनानुसार उस ग्रंथ के साधारणोपमा, अंसभवोपमा, संभवोपमा, विशेषोक्ति, और अतिशयोक्ति की परिभाषाएं दण्डी के काव्यादर्श से सर्वथा अनुवादित हैं। और अन्य भागों पर भी काव्यादर्श का पर्याप्त प्रभाव है। उस ग्रंथ का निर्माणकाल शक 736-797 (815-874ई०) है।

(4) सिंहली भाषा में एक 'सियाकसलकार (स्वभाषालंकार) नामक ग्रंथ है। वह दण्डी के काव्यदर्श पर ही अवलम्बित हैं। उसमें काव्यदर्श का स्पष्ट नामोल्लेख भी है। महावंश के अनुसार इसका लेखक प्रथम राजा सेन का राज्यकाल सेन 846-866 है।

(5) वामन के काव्यलंकार सूत्र से दण्डी के काव्यादर्श को तुलनात्मक विवेचना द्वारा विदित होता है कि वामन से दण्डी प्राचीन हैं। दण्डी ने रीति-सिद्धांत का जो महत्वपूर्ण विवेचन किया था, उसे वामन ने अंतिम सीमा तक पहुँचा दिया है। दण्डी, वैदर्भी और गौड़ी दो ही मार्ग बतलाता है- तत्र वैदर्भ गौडीयौ (1।40) किन्तु वामन उनमें एक पांचाली और बढ़कर तीन बतलाता है। वामन इनकों 'मार्ग न कह कर 'रीति' कहता हुआ (यद्यपि उसने मार्ग का प्रयोग भी किया है (3। 1।12) इतना महत्व देता है कि रीतिरात्माकाव्यस्य इससे ज्ञात होता है कि वामन को पांचाली रीति से और उसके पारिभाषिक शब्द रीति से दंडी सर्वथा अपरिचित था और भी ऐसे कारण हैं, जिनके द्वारा दण्डी का वामन से प्रथम होना प्रतीत होता वामन का समय आठवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध है। जैसे कि आगे स्पष्ट किया जायेगा। इन आधारों पर दण्डी की

अंतिम सीमा सन 800 ईसवी के लगभग हो सकती है। किन्तु एक और भी प्रमाण मिलता है। जिसके द्वारा यह सीमा भी पूर्व काल तक चली जाती है।
शारंगधर पद्धति में (संख्या 180) विज्जिका नाम्री एक स्त्री लेखिका का-

’नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिनाप्रोक्त सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

यह पद्य है काव्यादर्श में दण्डी ने मंगलाचरण प्रथम पद्य में ’सर्व -शुक्लसरस्वती लिखा है। इस पर विज्जका का यह व्यंग्यपरक उपहास है विज्जका के अनेक पद आचार्य मम्मट आदि के ग्रन्थों में उदाहरण रूप में मिलते है इसके पद्य विजया ;विज्जा के नाम से भी उद्धृत किये गये हैं। इसके विषय में कल्हण की सूक्ति मुक्तावली (सख्या 184) में राजशेखर के नाम से

’सरस्वतीव कार्णाटी विजया जयत्यसौ।
या विदर्भगिरां वासः कालिदासनन्तरम् ॥

यह पद्य हैं। इसके द्वारा यह दक्षिण प्रान्त की विदित होती है। संभवतः विख्यात कार्णाटी वही भारिका विजिया है; जो चंद्रादित्य की महारानी थी चंद्रादित्य द्वितीय पुलकेशिन का पुत्र था। इसका समय सन् 660 ई0 है। यदि विजिया का पिज्जिक से एकीकरण भ्रमात्मक न हो जैसा कि संभव भी नही है ;क्योंकि जिसने स्वयं अपनी विद्वत्ता के गर्व पर दण्डी पर व्यंग्योक्ति की है और जिसके विषय में राजशेखर जैसे विद्वान् द्वारा ऐसा महत्वपूर्ण उल्लेख हो तो दण्डी की अंतिम सीमा विज्जका के पूर्व लगभग सन् 600 ई0 है। इसके सिवा ईसवी सन् की छठी शताब्दी के सुबन्धु प्रणीत वासवदत्ता में -’यश्र छन्दोविचिति रिव कुसुमविचित्राभिः - छन्दो विचितिरिव मालिनासनाथा। ‘छन्दो विचिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्’ इस प्रकार तीन स्थलापर छन्दों विचिति शब्द का प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि दण्डी -’छन्दो विचित्यां सकलस्तत्प्रपई को विरचित। इस वाक्य में दण्डी ने अपने ‘छन्दों विरचित’ नामक अपनें छंद-ग्रंथ का नामोल्लेख किया है। उसी के विषय में उपर्युक्त वाक्य सुबन्ध के हैं। यदि वह कल्पना ठीक हो तो इसके द्वारा भी दण्डी का सुबन्धु के पूर्ववर्ती अर्थात ईसवी की छठी शताब्दी में होना सिद्ध होता है। दण्डी का समय बहुत से ऐतिहासिक विद्वान छठी शताब्दी में ही बतलाते है। जैसे मि० मैक्समूलर, मि. वेबर प्रोफेसर मेकडोनल और कर्नल जेकौबी आदि।
किन्तु दण्डी की पूर्व सीमा के लिये जो अन्य आधार उपलब्ध होते हैं वे अधिक प्रबल हैं, और उनके द्वारा ऊपर की मान्यता पर आघात पहुंचता है। श्री महेशचंद्र न्यायरत्न मि. पीटरसन और जोकोवी का मत है कि दण्डी के 2।197 में बाण की कादम्बरी (बोम्बे संस्कृत सीरीज संस्करण के पृ. 102 पंक्ति 16) का प्रतिबिम्ब हैं वाण का समय तो महाराज श्री हर्षवर्द्धन के समकालीन 606-647 ई० है।

‘किरातार्जुनीयपचदशसर्गादिकोंकारो दुर्विनीतनामधेयः।’

इस वाक्य द्वारा विदित होता है। अतएव भारवि का समय लगभग छठी शताब्दी के अंतिम चरण से शताब्दी के प्रथम चरण तक माना जा सकता है। और अवन्तिसुन्दरीकथा के-

‘मनोरथाव्हयस्तेषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।

ततस्तनूजाश्चत्वार स्त्रटुर्वेदा इवा भवन्' ।।
श्री वीरदत्त इत्येषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।
यवीयानस्य च श्लाघ्या गौरी नामा भवत्प्रिया ।।
ततः कथंचित्सा गौरी द्विजाधिपशिरोमणेः ।
कुमार दण्डिना मानं व्यक्तशक्तिमजीजनत् ।।

इन पद्यों से विदित होता है, कि भारवि का मध्यम पुत्र मनोरथ के चार पुत्रों में सबसे छोटा वीरदत्त था। वीरदत्त की पत्नी का नाम गौरी था इन्ही वीरदत्त और गौरी देवी से दण्डी का जन्म हुआ है। इनकी जन्मभूमि कांची (आधुनिक कांजीवर) थी। इसके द्वारा दण्डी का दाक्षिणात्य होना भी सिद्ध है, जैसे कि अबतक विद्वानों की कल्पना है। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये 20 वर्ष भी मान लिये जाय तो भी दण्डी का समय इस आधार पर सप्तम शताब्दी का अंतिम चरण हो सकता है। इसके द्वारा भामह और दण्डी के पूर्वापर के संबंध में जो पहिले विवेचन किया गया है। उसकी पुष्टि भी होती है कि भामह का समय महाकवि बाण के पूर्ववर्ती संभवतः छठी शताब्दी है। और दण्डी का समय सप्तम शताब्दी का अंतिम चरण ही माना जा सकता है।

4.3.3 दण्डी के प्रमुख ग्रंथ

राजशेखर ने इस प्रख्यात पद्य में दण्डी के तीन प्रबन्धों के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश किया है-
त्रयोअग्नयस्त्रयों देवास्त्रयों वेदास्त्रयों गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।। (शारंगधरपद्धति)

दण्डी की इस विश्रुत प्रबंधत्रयी में काव्यादर्श निःसंदेह अन्यतम रचना है' इसमें कोई मत नहीं हो सकते। आज कोई भी विज्ञ आालोचक 'छन्दोविचित' तथा कलापरिच्छेद को जो काव्यदर्श के आरंभ तथा अंत के आंरभ तथा अंत में निर्दिष्ट किये गये है, स्वतंत्र ग्रन्थ मानने के पक्ष में नहीं है। तो छंदशास्त्र का ही अभिधान है और दण्डी ने भी स्वयं इसे काव्य में प्रवेश पाने के लिए विद्या के रूप में निर्दिष्ट किया है (सा विद्या नौर्विविक्षूणाम्-काव्यादर्श) दण्डी की ही दृष्टि में यह विद्या है, रचना नहीं। इसी प्रकार 'कलापरिच्छेद' भी काव्यादर्श का ही कोई अनुपलब्ध अंश है जिसे दण्डी ने अवश्य लिखा था, परन्तु आज उपलब्ध नहीं है।

दण्डी का द्वितीय ग्रंथ कौन है ? दण्डी के नाम से दशकुमार-चरित' नामक रोमाचंक आख्यानों तथा कौतूहल से परिपूर्ण ग्रंथ पर्याप्तरूपेण प्रख्यात है । दशकुमार-चरित के विभिन्न पाठ-संस्करणों की परीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ के तीन खण्ड है- भूमिका, मूल ग्रंथ पूरक भाग, जिनमें क्रमश: 5, 8 तथा 9 उच्छवास है। ये तीनों भागों आपस में मेल नहीं खाते। भूमिका भाग (5 उच्छवास) पूर्वपीठिका के नाम से प्रख्यात है तथा पूरक भाग है। मूलग्रंथ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर चरित के अन्वर्थक नाम से प्रख्यात है। मूलग्रंथ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर घटना-वैषम्य है। मूलग्रंथ के आठ उच्छवासों में केवल आठ ही कुमारों के विचित्र चरित्र का उपन्यास है, परन्तु नाम की सार्थकता सिद्ध करने के विचार से पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित जोड़ दिया गया है और अधूरे ग्रंथ को पूर्णता की

कोटि पर पहुंचाने के लिए अंत में उत्तरपीठिका में भी जोड़ दी गई है। इस प्रकार आंरभ में पूर्वपीठिका से और अंत में उत्तरपीठिका से संपुटित समग्र ग्रंथ ही आज 'दशकुमार-चरित' के नाम से प्रख्यात है।

इधर दण्डी के नाम में प्रकाशित 'अवन्तिसुंदरी-कथा' तथा दशकुमारचरित के तुलनात्मक अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अवन्तिसुन्दरी कथा ही दण्डी की मौलिक रचना है। हस्तलेखों की पुष्पिका का प्रामाण्य तो है ही अप्पयदीक्षित (प्रसिद्ध वेदान्ती से भिन्न व्यक्ति) ने अपने 'नामसंग्रहमाला' नामक ग्रंथ में 'इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डिप्रयोगात्' लिखकर दण्डी को इस ग्रंथ का प्रामाणिक रचयिता सिद्ध किया है। इस कथा में 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका में वर्णित वृत है। अतः अनुमान लगाना सहज है कि 'अवन्तिसुदंरी' ही दण्डी की विश्रुत कथा है, जिसका सारांश किसी व्यक्ति ने दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में उपनिबद्ध किया। यह तथ्य ध्यातव्य है कि दशकुमारचरित का नाम न तो अलंकार के किसी ग्रंथ में और न किसी व्याख्या ग्रंथ में ही निर्दिष्ट किया गया है। इसकी सर्वाधिक प्राचीन टीका 'पदचन्द्रिका' कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना है (पुष्पिका से प्रमाणित)। फलतः दशकुमारचरित की रचना का काल 17वीं शती से कुछ प्राचीन अवन्तिसुंदरी बड़ी उदातशैली में विरचित कथा है। वर्ण्य विषय के अनुसार शैली में भी अंतर पाये पाते है। गाढबंध के लिए जहां समास की बहुलता है, वहां उपदेश के स्थलों पर असमस्त पदों का प्राचुर्य है। इसमें कादम्बरी की कथा का वर्णन है जिससे दण्डी बाण भट्ट के अनन्तर उत्पन्न हुए थे- यह तथ्य निश्चयेन प्रतीत होता है। शैली के ऊपर भी बाणभट्ट का प्रभाव पूर्णतः लक्षित होता है। मेरी दृष्टि में इसी गद्यकथा को लक्षित कर 'दण्डिनः पदलालित्यम् वाला आभाणक विदग्ध-गोष्ठी में प्रचलित हुआ था। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। लक्ष्मी का यह वर्णन ललितपदों का विन्यास प्रस्तुत करता है-रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यवादिताय: विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यस्य, शरत्रमियं विषसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरिय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यस्य, धूलिरियं घूसरीकरणाय चारित्रस्य (पृ० 47)। इसके आरम्भ में प्राचीन कविविषयक स्तुति-पद्यों के अनन्तर दण्डी तथा उनके पूर्व-पुरुषों का ऐतिहासिक वृत्त वर्णित है जो आरम्भ में दिया गया है और जिससे दण्डी के अविर्भाव का काल सप्तम शती का अन्तिम अथवा अष्टम शती का प्रथम चरण सिद्ध होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा ही निश्चयेन दण्डी का प्रख्यात गद्यकाव्य है। यह अधूरा ही उपलब्ध है। यदि यह पूर्णरूपेण उपलब्ध हो जाय, तो दशकुमारचित के साथ इसके सम्बन्ध की पूर्ण समीक्षा हो सके।

दण्डी के तृतीय प्रबन्ध की सूचना हमें भोजराज के श्रृंगारप्रकाश से प्राप्त होती है। भोज ने इसे दो बार अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया ह-'दण्डिनो धनंयस्य वा द्विसन्धाने (सप्तम प्रकाश) तथा 'रामायण-महाभारतयोर्दण्डिद्विसन्धानमिव' (अष्टम प्रकाश)। दण्डी का यह द्विसन्धान काव्य श्लेष के द्वारा रामायण एवं महाभारत के दोनों कथानकों को समान पद्यों में वर्णन करता है, यह महाकाव्य आज उपलब्ध नहीं है परन्तु भोज के द्वारा निर्दिष्ट होने से इसकी सत्ता एकादश शती में अनुमानत: सिद्ध होती है। इस प्रकार दण्डी की प्रबन्धत्रयी है-काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी तथा द्विसन्धानकाव्य।

6.4 दण्डी द्वारा रचित ग्रन्थ दशकुमार चरित

पुष्पपुरी (पटना) का राजा राजहंस मालवेश्वर मानसार को परास्त करता है, परन्तु तपस्या के बल से प्रभावसम्पन्न होकर मानसार पाटलिपुत्र पर चढ़ाई करता है और राजा को युद्ध में हराता है। राजहंस जंगल में चला जाता है और वहीं राजवाहन नामक पुत्र उसे उत्पन्न होता है। उनके मन्त्रियों के भी पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये बड़े होने पर यात्रा के निमित्त परदेश जाते है और भाग्य की विषमता के कारण अलग-अलग देशों में पहुँच जाते है तथा विचित्र संकटपूर्ण जीवन बिताते हैं। राजवाहन से पुनः भेंट होने पर वे आपबीती सुनाते हैं और इन्हीं साहसी कुमारों के साहसपूर्ण घटनाओं का आकर्षक वर्णन प्रस्तुत करने वाला आख्यान ग्रन्थ 'दशकुमार-चरित' कहलाता है। 'दशकुमार-चरित्र एक घटना-प्रधान कथानक है जिसमें नाना प्रकार की उल्लेखनीय रोमांचक घटनाएँ पाठकों के हृदय में कभी विस्मय की और कभी विषाद की रेखायें खींचने में नितान्त समर्थ होती हैं। कहीं पाठक भयानक अरण्यानी के बीच हिंसक पशुओं के चीत्कारों तथा दहाड़ों को सुनकर व्यग्र हो उठता है, तो कहीं वह समुद्र के बीच जहाज टूट जाने से अपने को पानी में काठ के सहारे तैरता हुआ पाता है। इन कहानियों का संबंध दोनों क्षेत्रों से है-स्थल-जगत् से तथा जल-जगत् से। मित्रगुप्त के जीवन में हमें तात्कालिक जलयात्रा का एक बड़ा ही रोचक चित्र मिलता है। मित्रगुप्त दामलिप्ति (ताम्रलिप्ति) नामक प्रख्यात बंगीय बन्दरगाह से किसी नवीन द्वीप में जहाज से जाता है। चट्टान की चोट पाकर जहाज टूट जाता है। बहुत देर तक तैरने के बाद संयोगवश उसे काल का एक तैरता हुआ टुकड़ा मिलता है। रात-दिन उसी के सहारे बिताने पर यवन नाविकों का एक जहाज दिखलाई पड़ता है जिसके कप्तान (नाविक नायक) का राम 'रामेषु' है। यवनों के ऊपर अन्य युद्धपोत (मद्गु) का आक्रमण होता है। यवन नाविक इस नवीन विपत्ति से विचलित हो उठते हैं। मित्रगुप्त जिसे जंजीरों से बांधा गया था मुक्त कर दिया जाता है। वह इस पोत के डाकूओं को अपनी वीरता से हराकर यवनों को बचाता है और उनसे पुरस्कृत होकर पुनः स्वदेश लौट आता है। इसी प्रकार की रोमांच तथा साहस से भरी हुई विस्मयावह घटनाओं से पूर्ण होने के कारण दशकुमार-चरित का वातावरण नितान्त भौतिक है। छल-कपट, मार-काट तथा सांच-झूट से ओत-प्रोत होने के कारण यह एक अत्यंत सजीव रचना है। दण्डी की प्रतिभा घटनाओं की यथार्थता में चरितार्थ होती है। यथार्थवाद यहां पूर्णतः प्रतिबिम्बित हो रहा है।

'रामेषु' सीरिया की शमी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सुंदर ईसा (रामत्रसुंदर, ईशुपुत्रईसा)। ईसाई धर्म के प्रचार के कारण यह नाम उस समय यवन नाविका में चल चुका था। गुप्त काल में भरत की नौसेना के बेड़े देशान्तारों से व्यापार करने में तथा रत्नार्वणों की मेखला से युक्त भारतभूमि की रक्षा करने में नितान्त पटु थे। दण्डी के इस वर्णन से घटना की पुष्टि होती है। दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट 'मद्गु' नामक जंगी जहाज झपट्टा मारनेवाले समुद्री पक्षी की समता रखने के कारण इस नाम से पुकारा गया है। दशकुमार के तृतीय उच्छवास में 'खनति' नाम एक यवन व्यापारी से एक बहुमूल्य हीरा ठगने को उल्लेख है। 'खनति' की व्युत्पति का पता नहीं कि यह किस भाषा

का शब्द है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि दण्डी के युग में ईरानी व्यापारी भारत में हीरा जवाहरात का व्यापार करते थे।

6.5 लक्षणग्रन्थ काव्यादर्श का परिचय

यह आचार्य दण्डी के समस्त ग्रन्थों में श्रेष्ठ और संस्कृत काव्यशास्त्र के मान्य प्राचीन ग्रन्थों में अन्यतम है। परम्परा और ग्रन्थ की पुष्पिकायें इसके प्रसिद्ध नाम 'काव्यादर्श' को ही प्रख्यापित करती हैं। इसका यह नाम सम्भवतः इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद के पंचम श्लोक के आधार पर पड़ा हो सकता है, जिसमें लेखक ने काव्य को प्राचीन राजाओं के यशोबिम्ब के लिये 'आदर्श' बताया है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी तो काव्य के लिये आदर्श ही है, क्योंकि काव्य अपने समस्त रूपकों के साथ बिम्बित हो रहा है।

इस प्रसिद्ध नाम के साथ इसका एक और अप्रसिद्ध नाम 'काव्यलक्षण' भी है। इसके बौद्ध व्याख्याकार 'रत्नश्रीज्ञान' इसे इसी नाम से अभिहित करते है। अनन्तलाल ठाकुर और उपेन्द्र झा के सम्पादकत्व में इसका संस्करण भी 'काव्यलक्षण' नाम से निकला था। ग्रन्थ के इस नाम का आधार भी प्रथम परिच्छेद के द्वितीय श्लोक का 'क्रियते काव्यलक्षणम्' अंश है। इसके 'काव्यलक्षणम्' शब्द को ग्रन्थ का नाम भी माना जा सकता है और काव्य को लक्षित-निरूपित करने वाला सामान्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी। आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवित' (3/33) में दण्डी को 'लक्षणकार' कहा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः अतीत में, कभी कुछ प्रदेशों में, यह 'काव्यलक्षण' के नाम से भी प्रसिद्ध रहा हो, किन्तु आज तो यह 'काव्यादर्श के नाम से ही सर्वत्र प्रसिद्ध है।

वर्तमान में उपलब्ध 'काव्यदर्श' अधूरा प्रतीत होता है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ (3/171) की ही 'तस्याः कलापरिच्छेदे रूपममाविर्भविष्यति' इस पंक्ति से लगता है कि इस ग्रन्थ में 'कलापरिच्छेद' के नाम से एक परिच्छेद और था, जिसमें उसके नाम के अनुसार ही सम्भवतः कलाओं (काव्य से सम्बद्ध नाट्य तथा तत्सदृश अन्य कलाओं) का विवेचन किया गया होगा। यह परिच्छेद 'काव्यादर्श' के किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अतीत में इसके अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। 'मालतीमाधव' के व्याख्याकार जगद्धर ने 'काव्यादर्श' से छह पद्य/पद्यांश अपनी व्याख्या में उद्धृत किए हैं, किन्तु उनमें से केवल तीन ही वर्तमान 'काव्यादर्श' में अविकल उपलब्ध होते हैं। दो का किसी तरह कहीं न कहीं समावेश किया जा सकता है किन्तु नाट्य के 'प्रकरण' नामक भेद से सम्बद्ध एक उद्धरण का समावेश वर्तमान 'काव्यदर्श' के किसी भी परिच्छेद में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसमें नाट्य की चर्चा कहीं नहीं है। लगता है यह उद्धरण अधुना अनुपलब्ध कलापरिच्छेद का रहा होगा। इसी प्रकार वात्सायन के 'कामसूत्र' के व्याख्याकार यशोधर ने अपनी 'जयमश्ला' नामक व्याख्या में दुर्वाचक और काव्यमस्यपूरण इन दो कलाओं से सम्बन्धित जो दो श्लोक 'काव्यदर्श' का नाम लेकर उद्धृत किए हैं, वे वर्तमान 'काव्यदर्श' में उपलब्ध नहीं होते है। ये भी 'कलापरिच्छेद' के ही होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रतीत होता है कि उक्त दोनों व्याख्याकारों के समय (1200-1300ई॰) 'काव्यदर्श' का उक्त परिच्छेद वर्तमान था तथा बाद में किन्हीं कारणों से नष्ट हो गया।

इस तथ्य की पुष्टि 'काव्यदर्श' के टीकाकार 'रत्नश्रीज्ञान' के 'चतुर्थः कलापरिच्छेदोऽस्य दर्णिनेऽस्ति, स त्विह न प्रवर्तते ।' इस तथा दूसरे टीकाकार तरुणवाचस्पति के 'चतुषष्टिकलासंग्रहात्मकः काव्यदर्शस्य कश्चिदन्योऽपि परिचछेऽस्तीत्याहुः इस कथन से भी होती है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि इन व्याख्याकारों के समय 'कलापरिच्छेद' का अस्तित्व कहीं न कहीं अवश्य था, किन्तु ये लोग जहाँ रहते थे, वहाँ उसका प्रचलन नहीं था (स त्विह न प्रवर्तते) । इसीलिये उसकी व्याख्या भी नहीं की गई । कलापरिच्छेद के प्रचलन के न होने का कारण यही हो सकता है कि उसमें जिन कलाओं का विवेचन किया गया था, वे उस युग की दृष्टि में काव्य से सम्बद्ध नहीं रह गई होंगी, इसलिये काव्यशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया था । परवर्ती काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कलाओं के विवेचन का न होना इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है कि काव्यशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में काव्यशास्त्र का काव्येतर कलाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था ।

वर्तमान में प्रकाशित 'काव्यदर्श' के संस्करणों में तीन परिच्छेद उपलब्ध होते हैं, जिनमें कारिका (लक्षण श्लोक) और उदाहरण दोनों को मिलाकर कुल 660 श्लोक हैं । कहा जाता है कि ब्रह्मवादि मुद्रणालय, मद्रास से प्रकाशित इसके संस्करण में चार परिच्छेद हैं, न कि वर्तमान संस्करणों के समान तीन । इसमें तृतीय परिच्छेद की समाप्ति यमक-प्रहेलिक निरूपण के साथ हो जाती है । चतुर्थ परिच्छेद में केवल दोषों का विवेचन है । इधर डॉ० जयशंकर त्रिपाठी ने अपने शोधग्रन्थ 'आचार्य दण्डी और संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन' में विभिन्न तर्को के आधार पर 'काव्यदर्श' के तृतीय परिच्छेद को अप्रामाणिक ठहरा कर केवल दो परिच्छेदों को मान्यता प्रदान की है । डॉ० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त ने अपने धारदार एवं युक्तियुक्त तर्कों से डॉ० त्रिपाठी की असंगत और अपारम्परिक मान्यता को निराधार सिद्ध कर इस क्षेत्र में पैर पसार रही बे सिर-पैर की आलोचना का जो समुचित उत्तर दिया है (द्० काव्यादर्श, धर्मेन्द्र कुमार गुप्त भूमिका, पृ० 17-21), उसके लिए वे कोटिश:साधुवाद के पात्र हैं । वास्तव में 'काव्यादर्श' के तीसरे परिच्छेद को अप्रामाणिक ठहराने से पहले डॉ० त्रिपाठी को 'काव्यदर्श' का वह स्थल बताना चाहिए था, जहाँ दण्डी की प्रथम परिच्छेद के श्लोक 61 में यमक के सम्बन्ध में की गई-

'तनु नैकान्तमधुरमतः पश्चाद्विधास्येत।'

यह घोषणा कार्यान्वित की गई हो । दण्डी ने 'यमक' सदृश नैकान्तमधुर, सुकर-दुष्कर अलंकारों, चित्रकाव्य के विविध भेदों तथा दोषों के निरूपण के लिए तीसरे परिच्छेद की रचना की थी, यह निश्चय है । बिना तीसरे परिच्छेद के वर्तमान -'काव्यदर्श' विकलांग-सा हो जायेगा, इसलिये उसके पृथक्करण के लिए कोई भी प्रयास करना उचित नहीं होगा ।

'काव्यदर्श' के 'पूर्वशास्त्राणि संहत्य' (1/2), 'निबबन्धुः क्रियाविधिम्' (1/9), तैः शरीरच्च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः (1/10) तथा किन्तु बीज विकल्पनां पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम्' 2/2 इन श्लोकांशों से सूचित होता है कि दण्डी के पहले काव्यशास्त्र के कई आचार्य हो चुके थे, जिन्होंने इस शास्त्र के नामकरण के साथ-साथ काव्य के शरीर, उसके शोभाधायक धर्म (गुण और अलंकार), विकल्पों (अलंकारों) के बीज तथा काव्य के लिए परिहार्य विविध दोषों के सम्बन्ध

में अपनी-अपनी दृष्टि और सामर्थ्य के अनुसार विवेचन किया था। आचार्य ने दण्डी ने उनके ग्रन्थों का सूक्ष्म आलोचना करने तथा पूर्ववर्ती एवं समकालीन काव्यग्रन्थों का गहराई से अध्ययन के उपरान्त (प्रयोगानुपलक्ष्य च 1/2) उस समय तक स्थापित हो चुके काव्य के सिद्धान्तों का जो परिसंस्कार किया (तदेव परिसंस्कर्तुमयमस्मत्-परिश्रमः 2/2), उसी का मूर्त रूप यह 'काव्यादर्श' है। कहना न होता कि दण्डी ने इसमें अपने समय तक के काव्यसिद्धान्तों को संशोधित (परिवर्तित एवं परिवर्धित) करके के साथ-साथ, अपने भी कतिपय सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया होगा। 'काव्यादर्श में निरूपित काव्सिद्धान्तों को परिच्छेदानुसार इस प्रकार देखा जा सकता है।

प्रथम परिच्छेद के द्वितीय श्लोक में सबसे पहले 'काव्यलक्षण' करने की प्रतिज्ञा करने की अनन्तर वाणी की प्रशंसा, काव्यवणी की प्रशंसा, भाषा के सुप्रयोग और दुष्प्रयोग की फलश्रुति, काव्यदोषों की अनुपेक्षणीयता, काव्यगत गुण-दोषों के ज्ञान के लिए काव्यशास्त्र की आवश्यकता, सूरियों के द्वारा काव्यशास्त्र के निबन्धन के साथ-साथ काव्य शरीर और अलंकारों के निर्धारण की सूचना, काव्य (शरीर) की परिभाषा, छन्द के अनुसार काव्य का विभाजन और छन्दोविचिति में उसके विस्तृत विवेचन का संकेत, महाकाव्यका लक्षण, परम्परा की पृष्ठभूमि में कथा और आख्यायिका के लक्षण के उपरान्त दोनों को एक ही गद्यजाति की मान्यता, मिश्रकाव्य नाटकों के अन्यत्र विवेचन का संकेत, चम्पू की परिभाषा, भाषा के आधार पर काव्य के चार भेद, संस्कृत और भेदों सहित प्राकृत का उल्लेख, सेतुबन्ध की रचना के माध्यम से महाराष्ट्री की प्रशंसा, अन्य प्राकृतों का संकेत, भाषामूल काव्यों की अलग-अलग विशेषतायें, 'बृहत्कथा' के पैशाची में लिखे जाने का संकेत, दृश्यादि के आधार पर काव्य के प्रकारत्रयत्व का प्रतिपादन सूक्ष्म भेदों वाले वाणी के अनेक मार्गों की सूचना के बाद स्पष्ट अन्तर वाले वैदर्भ और गौडीय मार्ग के वर्णन की प्रतिज्ञा। दश गुणां के उद्देश्य-कथन के साथ उनके वैदर्भ मार्ग के प्राण और गौड मार्ग में विपर्ययत्व का प्रतिपादन, प्रत्येक गुण के लक्षणोदाहरण पूर्वक प्रतिपादन के साथ तत्तद् गुण के प्रति दोनों मार्गों के विशिष्ट दृष्टिकोण का निर्देश, गुण-निरूपण के मध्य ही प्रसंश अग्राम्यत्व, अनेयत्व अनुप्रास, यमक तथा गौणवृत्ति के प्रति आचार्य की दृष्टि की सूचना, इक्षु और गुड आदि के दृष्टान्त से प्रति-कवि में स्थित मार्गभेद के प्रतिपादन में अपनी असमर्थता का प्रतिपादन करने के बाद अन्त में बताया गया है कि काव्य के यद्यपि प्रतिभा, श्रुत और अभियोग (अभयास) ये तीन कारण होते हैं, किन्तु अभयास पूर्वक वाग्देवी की उपासना करने वाले कवि को प्रतिभा के न रहने पर भी विदग्ध-गोष्टी में विहार कराने योग्य काव्यनिर्माण की सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

द्वितीय परिच्छेद में अलंकारों का निरूपण है। इसमें सबसे पहले अलंकार की परिभाषा के साथ यह बताया गया है कि अलंकारों की कल्पना आज भी हो रही हैं, इसलिये उसक पूर्ण रूप से निरूपण नहीं किया जा सकता। इसके बाद यह बताया गया है कि प्रत्येक अलंकार के मूलभूत तत्त्व का प्रदर्शन पूर्वाचार्य कर चुके हैं, दण्डी को अब उसका परिसंस्कार करना है। इसके पश्चात अलंकार के दोनों भेदों-मार्गविभाजक अलंकार गुण और साधारण अलंकार उपमादि-को पहली

बार बताने के पश्चात साधारण अलंकारों के निरूपण का उपक्रम किया गया है। इसी क्रम में सबसे पहले स्वभावाख्यान (स्वभावोक्ति), उपमा, रूपक, दीपक आवृत्ति, आक्षेप, अर्थात्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु सूक्ष्म लव, क्रम, प्रेयस् रसवत्, ऊर्जास्विन्, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अपहुरति, श्लेष, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुत-स्तोत्र (अप्रस्तुतप्रशंसा), वजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि और भाविक-इन 35 अर्थालंकारों का पूर्वसूरियों के नाम पर परिगणन किया गया है और उसके पश्चात् उपर्युक्त क्रम से ही प्रत्येक अलंकार का लक्षण, भेदोपभेद और उदाहरण के साथ विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। उसने अपने युग में स्वतन्त्र अलंकार के रूप में मान्य अनन्वय और ससन्देह को उपमा के भेदों, उपमारूपक को रूपक के भेदों में तथा उत्प्रेक्षावयव को उत्प्रेक्षा के भेदों में समाविष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त उसने उपमेयोपमा नामक एक और अलंकार का 'उपमा' के अन्योन्योपमा नामक भेद के रूप में निरूपण किया है। इस प्रकार देखा जाए तो उसने कुल 40 अर्थालंकारों का निरूपण किया है।

दण्डी के अर्थालंकारों के इस विवेचन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कुल विवेचित 35 स्वतन्त्र अलंकारों में 27 के भेदों की संख्या 190 है। केवल उपमा के ही 32 भेद है। उपमा के इन भेदों में से कोई ऐसे हैं, जो आगे चलकर स्वतन्त्र अलंकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। 10 या उससे अधिक भेद वाले अलंकार ये है-आक्षेप (24), रूपक (20), हेतु (16), दीपक(12), और व्यतिरेक (10)। अन्य विकल्पित अलंकार ये हैं- श्लेष (9), अर्थान्तरन्यास (8), रसवन् (8), विरोध (6), विशेषोक्ति (5), स्वभावोक्ति, समासोक्ति और श्लेश (प्रत्येक4), आवृत्ति और अपह्नुति (प्रत्येक के तीन भेद), विभावना, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, सूक्ष्म, श्लेश, प्रेयम, उदात्त, तुल्ययोगिता व्याजस्तुति सहोक्ति, संसृष्टि और निदर्शन (प्रत्येक के दो भेद)। जिनके एक से अधिक भेद नहीं हैं, ऐसे अलंकार ये है-यथासंख्या, ऊर्जास्वी, पर्यायोक्त, समाहित, अप्रस्तुत प्रशंसा, परिवृत्ति आशीः और भाविक।

दण्डी ने यमक का निरूपण बड़े मनोयोग से किया प्रतीत होता है यद्यपि 'यमक' उनके लिए 'नैकान्तमधुर' है, किन्तु जिस विशाल फलक पर उसका निरूपण हुआ है वह इस तथ्य को झुठलाता प्रतीत होता है। दण्डी ने उसके कुल 315 भेद माने हैं। सदृष्ट और समुद्गक आदि सात भेद इसके अतिरिक्त है। आचार्य ने इसके लगभग 50 भेदों के उदाहरण के लिए स्वरचित पद्यों का प्रयोग किया है। विद्वानों की दृष्टि में 'दण्डी' का यमक निरूपण संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में परिपूर्ण तथा विशद निरूपण का अद्वितीय निदर्शन है।

यमक के पश्चात अन्य शब्दालंकारों में गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, स्वरनियम स्थाननियम, वर्णनियम तथा प्रहेलिका का निरूपण है। इनमें स्वरनियम, स्थाननियम तथा वर्णनियम में से प्रत्येक के चार-चार भेद तथा प्रहेलिका के 16 भेद है। यमक को छोड़कर शेष सभी अलंकार की दृष्टि में चित्र हैं। तृतीय परिच्छेद के अन्तिम विवेचनीय विषय के रूप में दण्डी ने दोषों को लिया है। ये दोष संख्या में दस हैं, जैसे-अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम, शब्दहीन, मतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, देशकाल, कलालोकन्यायागम विरोध। भामह के द्वारा विवेचित

'प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानि' रूप दोष का उन्होंने 'विचार कर्मशप्रायस्तेनालीढेन किं फलम' कहकर काव्य में विचार करने का विरोध किया है। दसों दोषों का यह विवेचन अत्यन्त प्रशस्त शैली में लभगण साठ श्लोकों में सम्पन्न हुआ है।

इस प्रकार 'काव्यादर्श के वर्ण्यविषय का परिचय देने के पश्चात् अब हम उसकी उन विशेषताओं के सरलता से रेखांकित कर सकते हैं, जिन्हे उनकी संस्कृत काव्यशास्त्र के लिए योगदान माना जा सकता है-काव्यशास्त्र की आदिम कालीन मान्यता के अनुसार काव्य के केवल शरीर पक्ष पर ध्यान देते हुए भी दण्डी, ने काव्य की जो 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' के रूप में परिभाषा दी उसके 'इष्टार्थ' में वह 'आत्मतत्त्व' भी विद्यमान है, जो बाद में 'रस' के रूप में काव्यात्मा माना गया। इसकी इसी विशेषता के कारण पण्डितराज जगन्नाथ जैसे रसवादी कवि और आचार्य ने इसके प्रभाव में अपनी काव्य-परिभाषा दी।

काव्यशरीर के अलंकरण के लिए जिस 'अलंकार' तत्त्व की उद्भावना की गई, उसमें उन्होंने प्रसिद्ध 'अलंकार' के साथ ही 'गुण' को भी सम्मिलित करके दोनों को समान महत्व दिया। यद्यपि इससे दोनों की स्पष्ट न हो सकने वाली भिन्नता परवर्ती वामनाचार्य के द्वारा ही स्पष्ट की जा सकी, तथापि दोनों को समान स्तर प्रदान करने का श्रेय तो दण्डी को मिलना ही चाहिए।

दण्डी पहला काव्याचार्य है, जिसने प्रतीक विभिन्न काव्यमार्ग को पहचान तथा स्पष्ट अन्तरों वाले दो वैदर्भी और गौडीय मार्गो और उनके नियामक तत्त्वों के रूप में दस गुणों का संयुक्तिक और सबल प्रतिपादित किया। यद्यपि उसके इस प्रतिपादन में कुछ त्रुटियाँ हैं, तथापि उसके ही सैद्धान्तिक आधार पर आगे बढ़कर वामन ने रीति के नाम पर मार्गों की संख्या, मध्यवर्ती रीति पांचाली की मान्यता के साथ, तीन की तथा रीति का स्तर इस सीमा तक विकसित किया कि उसे काव्य की 'आत्मा' माने जाने का सौभाग्य मिला। उसके इस सौभाग्य में दण्डी का ही योगदान है।

दण्डी ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी वह काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक आचार्यो में सर्वश्रेष्ठ, तथा उसी में कुछ परिवर्तन-परिवर्धन कर विश्वनाथ ने उसे लगभग पूर्ण और युगानुकूल बनाया। कथा और आख्यायिका को एक ही गद्यजाति मानकर, दोनों में एकता प्रतिपादन कर दण्डी ने परम्परा से टक्कर लेने के साथ ही अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण का परिचय दिया है, यद्यपि सभी गद्यजातियों को एक मानने का उनका सिद्धान्त गले नहीं उतरता। दण्डी ने अपने गुण-विवेचन की कमी को दोष-विवेचन में दूर कर दिया है। उन्होंने दस दोषों का निरूपण बड़ी ही वैज्ञानिक दृष्टि से किया है। यद्यपि दण्डी ने गुण के समान दोष की भी कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी, तथापि उनके दोषों के विश्लेषण से पता चलता है कि वे दोष को भावात्मक तत्त्व मानते हैं। दण्डी के उदाहरण प्रायः स्वरचित है और उनमें निबद्ध विषय-वस्तु जीवन के सभी क्षेत्रों से ली गई हैं। उनमें कुछेक स्थलों को छोड़कर, अपने लक्षण से सर्वथा संगति मिलती है।

दण्डी आचायर्य के साथ-साथ प्रतिभाशाली कवि भी है। अत्यन्त दुरूह शास्त्रीय विषय को अत्यन्त सरस और ललित भाषा में प्रस्तुत करने में उनकी कोई तुलना नहीं। दण्डी की इन विशेषताओं के प्रकाश में संस्कृत काव्यशास्त्र में उनके योगदान का अनुमान सहज ही किया जा

सकता है। यदि किसी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की लोकप्रियता के मूल में उसका वह महत्व होता जो उसने अपने क्षेत्र में अपने विशिष्ट योगदान के द्वारा उपार्जित किया होता है, तो 'काव्यादर्श' संस्कृत काव्यशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ प्रमाणित होता है, क्योंकि जो लोकप्रियता, विशेषकर भारत के संस्कृतेतर तथा देशान्तरीय क्षेत्रो में, इसको मिली किसी अन्य ग्रन्थ को नहीं मिल सकी। इसकी इस लोकप्रियता का आकलन दो प्रकार से किया जा सकता है-1.अपने समकालीन और परवर्ती काव्यशास्त्रीय साहित्य पर इसके प्रभाव की दृष्टि से और 2. उसके सिद्धान्तों को समझाने के लिए उसके ऊपर की गई व्याख्याओं की दृष्टि से। पहले साहित्य-शास्त्र पर इसके प्रभाव को लेते हैं।

संस्कृत साहित्य के परवर्ती आचार्यों पर 'काव्यादर्श' का व्यापक प्रभाव पड़ा है, विशेषकर मध्यकालीन उत्तर भारतीय आचार्यों पर। भोज के दोनों ग्रन्थों- सरस्वतीकण्ठाभरण और श्रृंगारप्रकाश-में इसके व्यापक प्रभाव का कई रूपों में साक्षात्कार किया जा सकता है। कई स्थलों पर तो भोज ने बिना किसी परिवर्तन के ही काव्यादर्श के श्लोकों-कारिका और उदाहरण दोनों-को उद्धृत किया है और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन के साथ। 'अग्निपुराण' के काव्यशास्त्रीय भाग की भी वही स्थिति हैं वामन की रीति और उसके आधारस्तम्भ के विवेचन में 'काव्यदर्श' का ही प्रभाव काम कर रहा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। उत्तरकाल में अलंकारों की संख्या में जो भूयसी वृद्धि हुई, उसके भी मूल में दण्डी के अलंकार भेद ही है। कुछ अलंकार-भेद तो ज्यों के त्यों स्वतन्त्र अलंकार के रूप में गृहीत हो गए है। दण्डी की न केवल काव्यपरिभाषा ने अपितु उनके स्वरचित लालित्य उदाहरणों ने भी काव्यशास्त्र के अन्तिम दिग्गज आचार्य जगन्नाथ पण्डित तक को प्रभावित किया है। 'कामसूत्र' के व्याख्याकार और 'मालतीमाधव' के व्याख्याकार जगद्धर ने कुछ विषयों की पुष्टि के लिए 'काव्यादर्श' को उद्धत किया है, यह देखा जा चुका है। इसकी तुलना में अधिकांश कश्मीरी आचार्य और उनसे प्रभावित उत्तर भारतीय-विश्वनाथ आदि-दण्डी के प्रति अवश्य ही उदासीन रहे हैं। उनकी तुलना में उन्होंने उनके प्रतिद्वन्द्वी भामह की अधिक मान-सम्मान दिया हैं। इसका एक कारण भामह का कश्मीरी होना भी हो सकता है। किन्तु संस्कृत साहित्यशास्त्र के बाहर, अन्य भाषायी काव्यशास्त्रों पर जब दण्डी के प्रभाव को देखते है तो संस्कृत का बड़े से बड़ा काव्यशास्त्री भी सामने तुच्छ सा दिखाई देने लगता है। इतिहास बताता है कि तमिल, कन्नड़ और सिंहली भाषा के काव्यशास्त्र पर काव्यादर्श का व्यापक प्रभाव पड़ा है। अपनी रचना के डेढ़ दो शतक पश्चात् ही यह ग्रन्थ कन्नड़ भाषा के 'कविराजमार्ग' सिघली भाषा के 'विसवसलंकार' (स्वभाषालंकार) पर विभिन्न रूपों में अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहा है। इसी प्रकार ग्यारहवीं शती के मध्यभाग में बुद्धमित्र की तमिल रचना 'वीरचोरियम्' के अलंकार प्रकरण पर तथा लगभग 1140 में लिखित अज्ञात लेखक की तमिल रचना 'दण्डियलंकारम्' (दण्ड्यलंकारम्) हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकालिका कवि केशवदास की -कविप्रिया' (1601) पर इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

भारत के पड़ोसी देशों, जहाँ संस्कृत ही नहीं भारत की किसी भी भाषा का कोई काव्यशास्त्री नहीं पहुँचा सका, में भी दण्डी का व्यापक प्रभाव पड़ने की सूचना हैं सिंघली भाषा में रचित

'सियवलसलकर' लंका में वहाँ के राजा शीलवर्ण मेघसेन के द्वारा लिखा गया। 'काव्यादर्श' का प्राचीन तथा विश्रृत बौद्ध व्याख्याकार रत्नश्रोज्ञान लंका का ही निवासी था। (अन्य किसी भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का व्याख्यकार कोई बौद्ध भी हुआ है, ऐसा सुना नहीं गया) 12वीं शतीं के एक अन्य सिंघली लेखक संघरिक्खत का पालि भाषा में लिखित अलंकार गन्थ स्रबोधालंकार 'काव्यादर्श' पर आधारित है। इसके कई पद्य 'काव्यादर्श' के पद्यों के अनुवादमात्र है। तिब्बत भी दण्डी के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। वहीं की भोंट भाषा में 'काव्यादर्श' का एक अनुवाद किया गया था, जिसका सम्पादन डॉ॰ अनुकूल चन्द्र बनर्जी ने किया है। इसके अतिरिक्त तेरहवीं शताब्दी में तिब्बती भाषा में लिखित 'काव्यदर्श' की एक टीका मिलती है।

6.6 सारांश

संस्कृत गद्य काव्य के लेखकों में आचार्य दण्डी की कृर्ति आज भी अक्षुण्ण है जिस गद्य शैली को बाण नें अपने मनोरम कादम्बरी के द्वारा प्रसक्त किया उसी शैली को दण्डी ने अपने सरल, सुगम, दशकुमार चरित के द्वारा उज्जवल बनाते हुए चमत्कृत किया है। इनके द्वारा लिखा हुआ लक्षण ग्रंथ काव्यादर्श अलंकारशास्त्र के अत्यंत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। जिसका अध्ययन आप इस इकाई के माध्यम से बड़े ही सरलता पूर्वक कर सकते हैं। संस्कृत साहित्य के परवर्ती आचार्यों पर 'काव्यादर्श' का व्यापक प्रभाव पड़ा है, विशेषकर मध्यकालीन उत्तर भारतीय आचार्यों पर। भोज के दोनों ग्रन्थों- सरस्वतीकण्ठाभरण और श्रृंगारप्रकाश-में इसके व्यापक प्रभाव का कई रूपों में साक्षात्कार किया जा सकता है। कई स्थलों पर तो भोज ने बिना किसी परिवर्तन के ही काव्यादर्श के श्लोकों-कारिका और उदाहरण दोनों-को उद्धृत किया है और कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन के साथ। 'अग्निपुराण' के काव्यशास्त्रीय भाग की भी वही स्थिति हैं वामन की रीति और उसके आधारस्तम्भ के विवेचन में 'काव्यदर्श' का ही प्रभाव काम कर रहा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। उत्तरकाल में अलंकारों की संख्या में जो भूयसी वृद्धि हुई, उसके भी मूल में दण्डी के अलंकार भेद ही है। कुछ अलंकार-भेद तो ज्यों के त्यों स्वतन्त्र अलंकार के रूप में गृहीत हो गए है। दण्डी की न केवल काव्यपरिभाषा ने अपितु उनके स्वरचित लालित्य उदाहरणों ने भी काव्यशास्त्र के अन्तिम दिग्गज आचार्य जगन्नाथ पण्डित तक को प्रभावित किया है।

6.7 शब्दावली

किंवदन्ती - प्रसिद्ध
सन्निविष्ट - मिला हुआ
निर्दिष्ट - बतलाया गया
प्रतिबिम्बित - चित्रित
वंशनाली - बांस की चोंगा
अविश्वसनीय - जिस पर विश्वास न किया जा सके

बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) काव्यादर्श में परिच्छेद है ?

(क) 6 (ख) 3 (ग) 9 (घ) 10

(ब) आचार्य दण्डी के पिता का नाम था।

(क) वीरदत्त (ख) चित्रभानु (ग) वाचस्पति (घ) राघव

(स) काव्यादर्श में अंलकारों की संख्या है।

(क) 30 (ख) 62 (ग) 35 (घ) 45

(2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) आचार्य दण्डी के माता का नाम...है।

(ख) काव्यादर्श... में विभक्त है।

(ग) दण्डी का जन्मस्थान..है।

(3) निम्न वाक्यों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगायें:-

(क) दशकुमार चरित के रचनाकार आचार्य दण्डी है ( )

(ख) दण्डी ने गौणी रीति का प्रयोग किया है ( )

(ग) दण्डी ने दश गुणों का निरूपण किया है ( )

(घ) दण्डी ने अर्थालंकारों का वर्णन किया है ( )

6 . 8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) अ (ख) ब (क) स (ग)

(2) गौरी (ख) परिच्छेद (ग) कांची

(3) (√) (ख) (×) (ग) (×) (घ) (√)

6 . 9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) उमाशंकरशर्मा 'ऋषि'-संस्कृत साहित्य का इतिहास

(2) पं॰ बलदेव उपाध्याय-संस्कृत वांगमय का वृहद् इतिहास

6 . 10 उपयोगी ग्रन्थ

(3) कन्हैया लाल पोद्दार-संस्कृत साहित्य का इतिहास

(4) आचार्य दण्डी-दषकुमार चरित

(5) आचार्य दण्डी-काव्यादर्श

6 . 11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) महाकवि दण्डी का काल निर्धारण कीजिए।

(2) काव्यादर्श लक्षण ग्रन्थ है इसे सिद्ध कीजिए।